अथ त्रयोदशोऽध्यायः

तेह्रमाँ क्सेत्र, क्सेत्रग्य योग अद्ध्याय

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। १

स्रीभगुवान् बोल्ले
(क्सेत्र'र क्सेत्रग्य, यें के हों सैं)

या काया कुन्ती कै सुत रे, 'क्सेत्र' नाम तैं बोल्ली जा सै।
इस नै जाणै, उस नैं कहँदे, 'क्सेत्रग्य' नाम तैं जाणनियैं।।
'क्षेत्र' खेत या काया हो सै, गेर करम के बीज खेत मैं।
फसल उगावै उस का ग्याता, मालक उस नै 'क्सेत्रग्य' कहैं।। १

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं, यत्तज्ज्ञानं मतं मम।। २

जग यो सारा क्सेत्र समस्टी, व्यस्टी सारे देह खेत सैं।
उस का ग्याता मन्नै जाणो, सब खेत सरीराँ मैं अर्जन।।
भरत भूप कै कुल मैं जाए, खेत-खेत कै ग्याता की जो।
जाण समझ सै वो ए मैं या, मान्नूँ इसिये समझ जाणना।। २

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च, यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च, तत् समासेन मे शृणु।। ३

(क्सेत्र का बर्णन)

वो खेत्तर छेत्तर जो जिस-सा, जो विकार उस के, जित तैं जो।
पैदा हौवै से अर वो जो, उस का ग्याता जिस प्रभाव का।
वो सार रूप मैं मत्तैं सुण॥ ३

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।। ४

रिसियाँ नै भोत तह्राँ गाया, छन्द बणा कैं भोत तह्राँ के।

न्यारे-न्यारे मन्त्र बोल कैं, 'ब्रह्मसूत्र' के ब्रह्म जणाँदे।।
सबदाँ तैं जो आप्णै मत की, पुस्टी मैं कारण, तरक कहैं।
अर सैं निस्चित नाँ भरमावैं, सङ्का संस्सै दूर करैं सैं॥ ४

महाभूतान्यहंकारो, बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च, पञ्च चेन्द्रियगोचराः।। ५

[१-५]धरती पाणी आग हवा अर, आकास पाँचमाँ, पाँच ततव।
बणदा होन्दा सब जग इन तैं, 'महाभूत' सैं न्यूँ ये बोल्ले।।
सूक्सम केवल तन्मात्र अलग, रळ-मिळ पाञ्चूँ पञ्चीकृत।
दुनियाँ के वैं उपादान सैं, व्यापत जग कै कण-कण मैं ये।।
[६]इन तैं ऊप्पर एक समस्टी, 'अहंकार' ब्रह्माण्ड मूळ यो।
[७]इन तैं ऊप्पर विग्यानात्मक, एक तत्त्व सै 'बुद्धि', 'महद्' जो।।
खुद विकार सै तीन गुणाँ का, [१]तीन्नूँ गुण जो 'सत्त्व', 'रजस्', 'तम'।
समता स्थिति मैं 'अव्यक्त' कही, जग की प्रक्रिती, पुरुस उपस्थिति।।
पा कैं बिसम बणे ये गुण सैं, [२]'महत्' कुहावैं पहली विक्रिति।
त्रिगुणा प्रक्रिती 'माया' सै या, ब्रह्माण्ड बण्या सै यो इस तैं।।
पर कारण पर समवायी यो सै, इस तैं उत्पन 'बुद्धि' 'महत्' सै।
[३]सद् रज तम कै त्रिव्रित् करण तैं, तीन्नूँ आपस मैं मिलणै तैं।।
एक्कै गुण जिब मुख्य बणै सै, दो हाँ न्यूँ ये इस तैं दुर्बल।
तीन तह्राँ का 'हङ्कार' बणै, 'ब्रह्मा' राजस, सात्त्विक 'बिस्णू'।।
तामस 'रुद्र' कुहावै 'सिव' बी, इन तैं उत्पन [४-८]पाँच भूत ये।
आठ तह्राँ के कारण बोल्ले, आठ प्रक्रितियाँ स्रीकिरसण नै।।

कारण एक'र कारज तेइस, साङ्ख्य सास्त्र मैं सैं ये बोल्ले।
इन्द्र देव जो 'जीव' व्यापदा, कायास्थित बुद्धी मैं भासित।।
'सूत्र' समस्टी मैं सैं कहँदे, मणक्याँ मैं ज्यूँ तागगा बड़ कैं।
उन नै धारैं माळा बणदी, न्यूँ ए आत्मा जीव सूत्र सै।।
बुद्धी मैं हो कैं इन मैं भासित, तन जग माळा का यो सूत्तर।

बाँध बणावै देहमाळ सै, 'महत्' स्थिती नै न्यूँ ए धारै।।
[९-१९]कायापुर मैँ उस के साधन, करम ग्यान के इन्द्रिय दस सैँ।
उन तैँ जुड़दा मनीराम सै, इन्द्री, इन तैँ सै मन ऊप्पर।।
आँख जीभ'र नाक कान इन, ग्यान कराँदी इन्द्रियगण के।
बिसै रूप रस गन्ध सबद सैँ, मुखमण्डळ मैँ स्थित हो सैँ च्यारूँ।।
परस करान्दी इन्द्री पूरी, काया पै सै मँढ़ी चामड़ी।
[२०-२४]पाँच बिसै पाँच इन्द्रियाँ के, सोळा न्यूँ ये कारज सारे।
कायकँवल की पाँक्खड़ियाँ-से, देह खेत का निर्माण करैँ ।। ५

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं, संघातश्चेतना धृतिः।

(इस खेतर की सात फसल सैँ)

इस खेत्तर मैँ जो फसलैँ उगदी, वैँ मैँ तन्नै ईब बताऊँ।
[१]सुख सै आच्छा लाग्गै सब नै, 'राग' बणै, सुख मन नै रँग कैँ।।
[२]उस कै कारण चाहत होन्दी, उस्सै सुख नै फेर पाण की।
चाहत पूरी जो नाँ होवै, [३]दुख हो सै, इस तैँ [४]द्वेस बणै।।
च्यारूँ रहँदे काया इन्द्रिय, मन चित्त अहंक्रिति अर बुद्धी।
इन तैँ बणदै [५]देहपिण्ड मैँ, [६]इन मैँ सब मैँ व्याप्त चेतना।।
लोहपिण्ड मैँ ब्याप्त आग-सी, जीव ततव की व्रित्ती आतमा।
[७]'धृति' अर होवै धीरज व्रित्ती, बुद्धि ततव तैँ प्राप्त ज्ञान पै।
हो कैँ स्थित खुद उस पै टिकणाँ।।

एतत्क्षेत्रं समासेन, सविकारमुदाहृतम्।। ६

यो खेत कह्या सार रूप मैँ, कत्तिस इसके घटक ततव सैँ।
सङ्ग विकाराँ कै न्यूँ मन्नै।। ६

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं, स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।। ७

(ग्यान्नी की सैँ बीस निसान्नी)

[१]नहीँ मानणा खुद नै आच्छा, [२]जो नाँ हो, वो कर दिखळा कैँ।
ढौंग न करणा, [३]तन मन वाणी, इन तैँ पर नै कस्ट न देणा।।

[४]देवै कस्ट कदे जो कोए, उस नै सहणा क्समा, [५]सरळता।
मन मैँ ब्याप्पी छोड कुटिलता, सोच्चै बोल्लै, सीधी तह्रियाँ।।
पर कै सँग ब्योहार करै सब, सीद्धा-साद्धा रहणा करणा।
[६]सही ढङ्ग तैँ रहणा-सहणा, आचार सिखावै, उस गरु कै।।
पास बैठ कैँ, सेवा मैँ रह, ज्ञान कमाणा, [७]तन-मन नै अर।
ब्यौहाराँ नै स्वच्छ राखणा, [८]टिकणा आप्णै निस्चै पै अर।
[९]तन-मन बुद्धी नै काब्बू मैँ, राक्खै इन नै भाज्जण नाँ दे।। ७

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।। ८

[१०]इन्द्रियबिसयाँ मैँ मन नै नाँ, रँगणे देणा, [११]हङ्कार नहीँ।
[१२]जलम मरण अर वृद्ध अवस्था, रोग्गाँ के दुख, खाम्मी देक्खै।। ८

असक्तिरनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। ९

[१३]'मैँ' अर 'मेरा' सोच समझ कैँ, मन का फँसणा नाँ होवै।
[१४]सुत, दारा, घर, स्थावर, जङ्गम, सम्पत्ती मैँ घणै राग तैँ।।
'मैँ ए ये सूँ', 'इन बिन कुछ नाँ', ये भाव हिदे मैँ नाँ रखणा।
इतणा प्यार न इन तैँ करणा, [१५]नित अर आप्णा मन सम रखणा।
प्रिय या अप्रिय जिब बी कुछ हो, सुळझै बिगड़ै काम किमे बी।। ९

मयि चानन्ययोगेन, भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।। १०

[१६]मेरै मैँ ए चित्त लगा कैँ, भक्ति ओर की नाँ ए करणा।
[१७]एकान्त जघाँ मैँ रहणै की, आदत आप्णी गेर रहै जो।
[१८]मन नाँ लगणा भीड़-भाड़ मैँ, सभा-सुसाटी मैँ नाँ रमणा।। १०

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। ११

[१९]आत्मग्यान मैँ निस्ठा होणा, [२०]तत्त्व समझ कैँ वस्तु परखणा।
बीस बात ये ग्यानप्राप्ति मैँ, भोत सहायक 'ग्यान' कही सैँ।।

ग्यान होण की बीस निशान्नी, मञ्जिल ये सैं बीस ग्यान की।
'अग्यान' कह्या इन तैं उलटा, उस तैं बच कैं रहणा अर्जन।। ११

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

(ग्यान का बिसै अर फळ)

जाणन जोग्गा जो वो बोल्लूँ, जो जाण अमरता पावै सै।
मरणबन्ध तैं छूट्टै माणस।।

अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तन्नासदुच्यते।।१२

(उणतीस निसान्नी ग्यानबिसै की)

[१]'आदि' न सरुआत कितै कद्दे, [२]सै वो ब्रह्म परम अर ऊँच्चा।।
[३]नाँ ए 'सत्' सै, जाति क्रिया गुण, इन तैं वर्णन जोग्गा नाँ वो।।
[४]नाँ ए 'नाँ सै' इसा कुहावै।। १२

सर्वतः पाणिपादं तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति।। १३

[५]सब कान्हीं हात्थाँ पाँ आळा, सब कान्हीं आँक्खैं, सिर, मुँह सैं।
सब ओड़ सैं अर कान उस के, [६]दुनियाँ मैं सब घेर खड़्या।। १३

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव, निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। १४

[७]बाह्य इन्द्रियाँ करम ग्यान की, कारक बोधक साधन दस सैं।
इन तैं जुड़ जो काम करावै, मन वो हो सै इन्द्री दुहरा।।
जाणै अर सारै बिसयाँ का, सङ्कल्प विकल्प तैं भेद करै।
भीतर की वो इन्द्री मन सै, 'चित्त' चेतना ज्ञान रूप मैं।।
प्रस्तुत करदा आप्णा कर कैं, नाम 'अहङ्क्रिति' भीतर साधन।
अलग-अलग अर कट्ठे इन सब, ग्यान क्रियासाधन कर्ता का।।
भावबिबेचन इन का कर कैं, निर्णै करदी ग्राह्य हेय का।
करण भीतरी 'बुद्धि' परम सै, बाह्य भीतरी साधन बस ये।।
सबबिध कारक ग्राहक बोधक, कृति गति रूपादि बिसै सारे।
सङ्कल्प, चेतना अर 'मैं' निर्णै, ये सब बण कैं भासित होन्दा।।

[८]एक नहीं सै इन्द्री इस कै, [९]फँस्या नहीं अर जुड़्या कितै नाँ।
[१०]सब नै धारै पाळै पोस्सै, [११]निर्गुण ओर [१२]गुणाँ का भोक्ता।।
इन्द्रिय बिसयाँ तैं, सुख दुख अर, लोभ मोह मद ईर्खादी का।
भोक्ता बी यो ब्रह्म स्वयं सै।। १४

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं, दूरस्थं चान्तिके च तत्।। १५

[१३]बाहर, [१४]भीत्तर, सब भूत्ताँ कै, [१५]स्थावर बी सै [१६]जङ्गम बी यो।
[१७]सूक्षम सै यो, इस कारण तैं, नाँ ए जाण्या जावै अर्जन।
[१८]दूर खड़्या अग्ग्यानी नै यो [१९]पास तथा सै ग्यानी म्हैं यो।। १५

अविभक्तं च भूतेषु, विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं, ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। १६

[२०]नहीं बँड्या बी भूत्ताँ मैं यो, [२१]न्यारा-न्यारा बैठ्या लाग्गै।
[२२]भूत्ताँ का अर पाळक-पोसक, स्थिति कै बखतैं समझो इस नै।।
[२३]प्रलै समै मैं गास बणावै, रस्सी नै जिब साँप समझदा।
सृस्टी वा अग्ग्यान स्थिती की, अग्ग्यान रहै सै जिब ताईं।।
रस्सी मैं सै साँप दीखदा, असल चीज का ग्यान जिबै हो।
गास बणा कैं भखै साँप नै, न्यूँ ए अग्ग्यानदसा मैं या।।
कार्य रूप मैं अलग लगै सै, कारण परम समझ मैं आवै।
एक रूप मैं दुनियाँ दीक्खै, न्यूँ ए ग्यानदसा मैं दुनियाँ।।
ब्रह्म ततव का गास बणै सै, प्रलै समै मैं दुनियाँ नै वो।
गास बणावै सब भेद्दाँ सँग, [२४]उत्पन करदा सृस्टिकाळ मैं।। १६

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्, तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं, हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। १७

[२५]सूरज चाँद सितारे नभ मैं, चिमकै अन्तरिक्ष मैं बिजळी।
धरती पर सै आग जळै या, जड़ अर चेतन सब मैं रहँदी।।
देहलोक मैं ग्यारा इन्द्री, कारक बोधक सङ्कल्पक यैं।
क्रिया ग्यान सङ्कल्प क्रिया तैं, दुनियाँ नै सैं करैं प्रकासित।।

सब तैँ ऊप्पर बुद्धी राणी, गलत सही मैँ भेद करावै।
जोत प्रकासक स्थूल सूक्ष्म की, प्रकास किरण वो इन मैँ भर कैँ।।
इन जोत्ताँ की बी वो जोत्ती, [२६]ग्यान व्रित्ति का परम बिरोधी।।
फैल जगत नै दुखी करै जो, उस अग्ग्यान अँधेरैँ तैँ वो।
'पर' सै ऊप्पर, दूर, अछूत्ता, परम ततव वो ग्येय कह्या जा।।
[२७]ग्यान, [२८]ग्यान का बिसै तथा [२९]फळ, ब्रह्मरूप जो होणा होसै।
यैँ बी सारे ग्येय ब्रह्म सै, हिरदै मैँ सब कै खास धर्‌या।। १७

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं, ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय, मद्भावायोपपद्यते।। १८

(प्रकरण का उपसंहार)

न्यूँ छेत्र, ग्यान, बिसै ग्यान का, बोल्ल्या सार रूप मैँ तन्नै।
मेरा भगत जाण समझ यो, मैँ ए बणनै जोग्गा होवै।। १८

प्रकृतिं पुरुषं चैव, विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। १९

(प्रक्रिति पुरुस के गुण किस तह्रियाँ के?)

प्रक्रिती नै ओर पुरुस नै तैँ, समझ अनादी दोन्नूँ नै ए।
सरू कदे नाँ कितै, किसै तैँ, होणाळे नाँ, समझ नित्य तैँ।।
विकार जगत् मैँ जो सैँ जितणे, बुद्धी तैँ इन्द्रिय बिसयाँ तईं।
सुख-दुख-इच्छा-सोक-मोह-सी, परतीति रूप मैँ सैँ परिणत।
गुण सैँ जग मैँ उन नै समझो, सत रज तम तैँ होणै आळे।। १९

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां, भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। २०

रहैँ बरोब्बर सत रज तम जिब, ये तीन्नूँ मिल प्रक्रिति कुहावैँ।
'अव्यक्त' रूप ये इन का होवै, पुरुस उपस्थिति मैँ खळबळ हो।।
क्सोभ होण पै व्यक्त सभी हौँ, अलग-अलग प्रतिभान गुणाँ का।
'प्रतिभा' पहली कार्य अवस्था, 'महत्' आकार विकास तैँ वा।।
'बुद्धि' ग्यान प्रकास प्रथम जो, बुद्धि व्यवस्थित होणै कारण।

कारण कारज करण भाव तैँ, जगद्व्यवस्था करदी 'बुद्धी'।।
न्यूँ कारण करण कर्तृभाव मैँ, कारण घटक कही सै 'प्रक्रिती'।
सुख दुःख कै भोक्तृभाव मैँ अर, कारण 'पुरुस' कुहावै चेतन।। २०

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि, भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य, सदसद्योनिजन्मसु।। २१

'पुर्' सै पोल्ली, पुरदी, भरदी, प्राकृत सृस्टी कारण कारज।
बण कैँ स्थित 'उस' बस कैँ उस मैँ, उस नै चिमकावै वो अर्जन।।
'पुरुस' कुहावै तद अविकारी, भोग्गै अर वो सत रज तम तैँ।
उत्पन होए सुख दुख-से गुण, प्राकृत जग का आप्पा बण कैँ।।
उस नै ए वो, स्वयं समझ कैँ, 'मैँ सूँ सुखिया, मैँ सूँ दुखिया।
मूरख, ग्यान्नी', खुद नै समझै, क्यूँकी सात्त्विक ओर असात्त्विक।।
राजस तामस देहाँ मैँ जो, सीत उस्ण से द्वन्द्वभाव तैँ।
सुख-दुख-इच्छा-सोक-मोह-से, गुण जो प्रगटैँ, उन मैँ फँसदा।।
बँधदा उन तैँ 'मेरे ए ये', आरोपित न्यूँ खुद पै करदा।
आच्छी माड़ी, जड़ अर चेतन, जूणाँ मैँ यो जिब सै जान्दा।। २१

उपद्रष्टानुमन्ता च, भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो, देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। २२

कारण कारज देह इन्द्रियाँ, मन चित्त अहङ्कृति अर बुद्धी।
आप्णा-आप्णा काम करैँ ये, कर्ता भोक्ता सुख दुख के हौँ।।
बुद्धी मैँ प्रतिबिम्बित भासित, हो कैँ यो इन कै धोरै स्थित।
साक्सी द्रस्टा बैठ किनारै, जलप्रवाह नै ज्यूँ देक्खै सै।।
नाँ यो बहँदा, नाँ कुछ करदा, नाँ यो डरदा डूब्बण तैँ सै।
न्हाण-धोण का ओर तिरण का, आनँद बी यो लेन्दा नाँ सै।।
बैठ्या देक्खै मौन भाव तैँ, नाँ यो टोक्कै रोक्कै इन नैँ।
'बहँदा रह तैँ पाणी मैँ न्यूँ', मौन स्वीक्रिती उन नै देन्दा।।
काया इन्द्री मन अर बुद्धी, चेतनराम बिना नाँ किम्मे।

कर ये पान्दे, न्यूँ यो इन का, बणदा पाळक पोसक स्वामी।।
बुद्धि सचिव जो ल्यावै इस नै, सुख-दुख-इच्छा-सोक-मोह-से।
अनुभव सारे, उन नै लेवै, न्यूँ यो 'भोक्ता' बणदा आत्मा।।
देहधाम का सब तैं बड्डा, सासक राजा ईस्वर यो सै।
भाण्ड्याँ, लोट्ट्याँ, कळस, घड़्याँ मैं, अर सब भूत्ताँ कै हिरदै मैं।।
अलग-अलग आकास दीखदा, लोट्टे, भाण्डे टूट्ट्याँ पाच्छै।
एक्कै आकास रहै, न्यूँ यो, देह उपाधी जाएँ पाच्छै।
एक्कै आत्मा परमात्मा यो, कह्या देह मैं 'परम पुरुस' सै।। २२

य एवं वेत्ति पुरुषं, प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, न स भूयोऽभिजायते।। २३

(प्रक्रिति पुरुस के ग्यान का फळ)

जो न्यूँ समझै पुरुस तईं अर, प्रक्रिती नै सुख आदि गुणाँ सँग।
प्रारब्ध देह मैं पूरी तह्याँ, रहँदा करदा ब्यौहार सभी।।
प्रारब्ध करम सब भोग्ग्यै पै, प्रारब्ध देह यो छूट्टयै पै।
नाँ वो फेर जलम सै लेन्दा।। २३

ध्यानेनतात्मनि पश्यन्ति, केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन, कर्मयोगेन चापरे।। २४

(आतमग्यान के साधन)

[१]रोक चित्त की बाह्य व्रित्तियाँ, आप्णै भीत्तर आच्छी तह्याँ।
ध्यान लगा कैँ धर कैँ मन नै, सविकल्प समाधी कै पाच्छै।।
विकल्प बी सब दूर फैँक कैँ, कर कैँ खाल्ली चित् जिब होन्दा।
निर्विकल्प समाध मैँ केवल, जोत प्रकासित आप्णै मैं जो।।
[२]कोए देक्खैं प्रक्रिति पुरुस नै, न्यारा-न्यारा समझण आळे।
गिण कैँ उन नै 'सम्यक् ख्याती', सबै गुणाँ की अर निर्गुण की।।
कर कैँ होवैं मुक्त जगत् तैं, [३]नित ओर अनित आच्छी तह्याँ।
परम नित्य नै समझण आळे, ग्यानमार्ग तैं एक समझ कैँ।।
खुद नै खुद तैं बुद्धी तैं, दूज्जे कोए ग्यान्नी जन अर।

[४]करमयोग तैं फळ की इच्छा, छोड प्रभू पै कर कैँ अर्पित।।
करम करैं सैं आप्णै सारे, चित सै निर्मल उन का हो ज्या।
ओट बिसै की नाँ रहणै तैं, परम ततव सै प्रगटै उन नै।। २४

अन्ये त्वेवमजानन्तः, श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव, मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। २५

[५]ओर, पर, न्यूँ नाँ समझदे, सुण ओराँ तैं मेरै धोरै।
आवैं करदे भक्ती, वैं बी, पार करैं सैं मृत्यु नदी नै।।
सुणी बात कै पाच्छै चाल्लैं, विवेक नहीं सै उन कै धोरै।
सुणी बात मैं सर्धा नोक्का, एक सहारा हो सै उन का।।
लाग्गे रहँदे, पर, जो माणस, आप्णै रस्तै पै सर्धा तैं।
होळे-होळे, देरी तैं ए, चित्त की सुद्धी होएँ पाच्छै।
मञ्जिल वैं बी पावै सैं अर, पार करैं सै म्रित्युनदी नै।। २५

यावत् संजायते किञ्चित्, सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तद्विद्धि भरतर्षभ।। २६

(क्सेत्र क्सेत्रग्य जुड़णै तैं सब उत्पन)

जिब तक जितणी होवै किम्मे, चीज जगत् मैं स्थावर जङ्गम।
जड़ अर चेतन, वो तैं अर्जन, खेत खेत नै जाणनिये इन।
दोन्नूँ कै ए मिलणै तैं हो, समझ भरताँ मैं स्रेष्ठ तैं न्यूँ।। २६

समं सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं, यः पश्यति स पश्यति।। २७

(ईस्स्वरदर्सन की करी बडाई)

स्थूल'र सूक्सम, जड़ अर चेतन, स्थावर जङ्गम, सब भूत्ताँ मैं।
एक जिसै स्थित परमेसर नै, खतम होणियाँ मैं अविनासी।
उस नै जो देक्खै, वो देक्खै।। २७

समं पश्यन् हि सर्वत्र, समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं, ततो याति परां गतिम्।। २८

एक रूप मैं देख रह्या जो, सब मैं स्थित परमेसर नै वो।

नाँ हानि करै खुद तैँ खुद की, इस तैँ पावै परम गती सै।। २८

प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति।।२९

प्रक्रिति ईस की माया जो सै, किमे बणाना सुभाव उस का।
वा ए करम करै सब तह्यिाँ, यो जो देक्खै, अर सै खुद नै।
'कर्ता नाँ मैँ सूँ', न्यूँ समझै, वो ए द्रस्टा परम ततव का।। २९

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं, ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।३०

जिब भूत्ताँ के अलग-अलग सब, भेद्दाँ नै एक ततव मैँ स्थित।
सास्त्र गुरू कै उपदेस्साँ तैँ, जाणै अर अनुभव तैँ देक्खै।
उस तैँ ए फैल्ली या दुनियाँ, समझै तद वो ब्रह्म बणै सै।। ३०

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्, परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते।।३१

(आत्मा नाँ सै लिपत देह मैँ)

[१]आदी, कारण तीन तह्ाँ के, समवायि असमायि निमित्ता।
तीन्नूँ क्यूँकी इस के नाँ सैँ, [२]कारण गुण अर सत्त्व रजस् तम।।
नहीँ एक बी इस का कोए, [३]मोह, सोक अर राग द्वेस से।
क्रोध लोभ अर ईर्खा सुख दुख, कारज गुण इस मैँ नाँ सैँ।।
[४]देस काळ अर पिण्ड उपाधी, तीन्नूँ तैँ बी दूर भोत यो।
था बी जो कुछ, सै बी जो कुछ, अन्त न पाया जिस का इब तक।।
ओर कदे नाँ मिल पावैगा, इसी स्रिस्टी मैँ होगा जो कुछ।
सम्भव नाँ सैँ आदि गुणाँ बिन, इस कारण यो सै परमात्मा।।
[५]आदि न हो, तो [६]अन्त न होवै, जलम मरण कै बीच होणिये।
बिकार कठै तैँ हौँगे इस मैँ?, इस तैँ सै 'अव्यय' अविकारी।।
[७]व्यस्टि उपाधी काया मैँ अर, ब्रह्माण्ड उपाधि समस्टी मैँ।
दोन्नूँ तह्यिाँ की काया मैँ, हो कैँ स्थित बी कुन्ती के सुत।।
जीव'र सूत्रात्मा यो नाँ ए, करदा कर्म किमे[८], नाँ ए।

ल्हिसदा उन का कारक बण कैँ, फळ भोग्गण कै ल्हिसै मोह तैँ।। ३१

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते।।३२

सब तैँ ऊप्पर हो कैँ बी ज्यूँ, सब मैँ आकास ततव हो सै।
सूक्षम होणै तैँ नाँ लिपदा, धूँऐ धूळ'र भाँफ जिस्याँ तैँ।।
काया मैँ स्थित न्यूँ ए आत्मा, नाँ ए लिपदा पुण्य पाप तैँ।
उन कै फळ सुख-दुःखादी तैँ, हर्स सोक तैँ नाँ ए लिपदा।। ३२

यथा प्रकाशयत्येकः, कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं, प्रकाशयति भारत।।३३

(ईस्स्वर करदा क्सेत्र प्रकासित)

ज्यूँ चिमकावै इकळा पूरा, इन्द्रीगोचर जग यो सूरज।
पूर्ण खेत नै, ब्रह्माण्ड पिण्ड नै, न्यूँ ए यो खेत्तर आळा।
चिमकावै सै भरतवंश के, गौरव अर्जन, परम ततव यो।। ३३

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं, ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च, ये विदुर्यान्ति ते परम्।।३४

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

(जो जाणैँ पावैँ परम गती)

खेत'र खेत्तर नै जाणनिये, इन दोनुवाँ कै भेद नै जो।
सास्तर पढ, गुरु-उपदेस्साँ तैँ, खुल गी जो उस ग्यान-आँख तैँ।।
भूत्ताँ का, सर्व विकाराँ का, मूळ अविद्या अव्यक्त स्वयम्।
ग्यानभिन्न जो त्रिगुणा माया, लीला वा उस परमेसर की।
उस तैँ छुट्टी मुक्ती नै जो, जाणैँ पावैँ परम ब्रह्म वैँ।। ३४

स्रीमती सीत्तादेब्बी अर स्रीस्रीनिवास सास्तरी कै बेट्टै सिवनारायण सास्तरी कै हरियाणी भास्सा कै गीत्तायन काब्व्यभास्स्य मैँ तेह्रमाँ अद्ध्याय पूरा होया।। १३।।

पूर्वसलोकयोग ४८९ + ३४ = ५२३